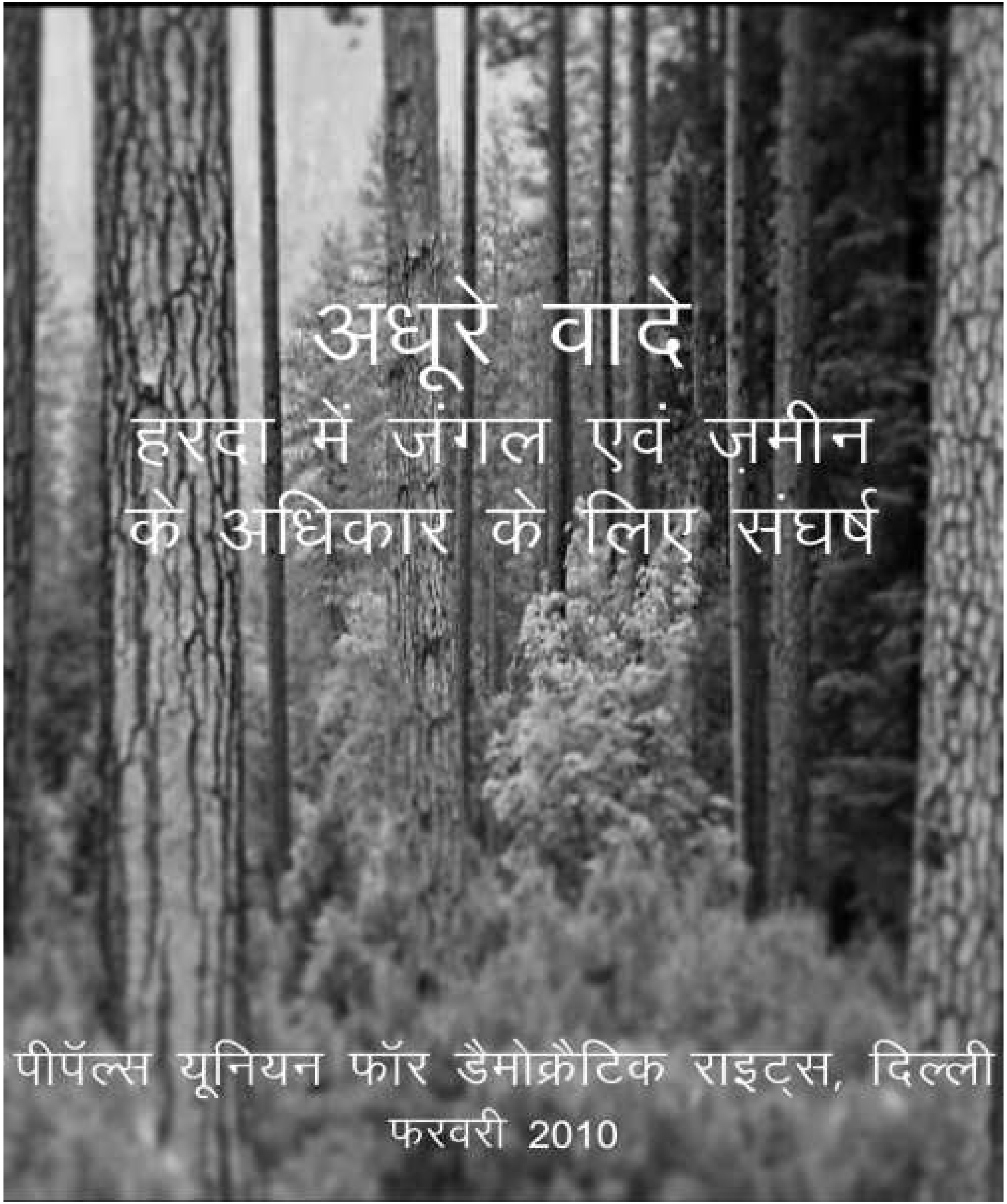

अधूरे वादे

हरदा में जंगल एवं ज़मीन के अधिकार के लिए संघर्ष

पीपॅल्स यूनियन फॉर डैमोक्रैटिक राइट्स, दिल्ली

फरवरी 2010

2006 में भारत सरकार ने अनुसूचित जनजाति एवं अन्य परंपरागत वनवासी (वन अधिकार की मान्यता) अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम परंपरागत रूप से जंगल की ज़मीन पर रहते आ रहे आदिवासियों एवं गैर–आदिवासियों को उनकी ज़मीन पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्वामित्व का कानूनी अधिकार देता है। इस विधेयक की पूरे देश में नागरिक अधिकार संगठनों ने सराहना की क्योंकि इसके द्वारा लम्बे समय से अपने अधिकारों से वंचित कर दिए गए समुदायों को ज़मीन रखने के और इसके मालिकाना हक को मान्यता देकर इतिहास में की गई गलती को सुधारने की भावना थी। वनभूमि पर व्यक्तिगत एवं सामुदायिक अधिकारों के अस्तित्व में आने के साथ, पहली बार ऐसा लगा कि उन समीकरणों को उल्टा जा सकता है जो जंगल की ज़मीन पर एकमात्र अधिकार रखने वाले वनविभाग की लम्बे समय से हिमायत करते आ रहे थे।

वर्ष 2008 में मध्यप्रदेश सरकार ने इस अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिए प्रस्तावित समय सीमा का एक मसौदा तैयार किया। ऐसा आंकलन किया गया कि ये प्रक्रिया फरवरी माह के आरंभ में शुरू कर दी जाएगी तथा इसे सितम्बर 2008 तक पूरा कर लिया जाएगा। लेकिन इस दिशा में जो प्रगति हुई वह काफी धीमी रही है। इसकी क्रियाविधि के निर्धारण एवं प्रक्रिया को शुरू करने में हुई देरी का परिणाम वनविभाग एवं प्रशासकों के साथ आम लोगों के तनाव एवं संघर्ष के रूप में सामने आया है। श्रमिक आदिवासी संगठन के कार्यकर्त्ताओं पर हुए हमलों तथा आदिवासियों के खिलाफ अनेकों मामले एवं गिरफ़्तारियों के संबंध में रिपोर्ट मिलने पर पीयूडीआर ने सच्चाई का पता लगाने के लिए 5–8 सितम्बर 2009 के बीच एक चार–सदस्यीय जाँच दल हरदा भेजा।

श्रमिक आदिवासी संगठन उन संगठनों में से एक है जो समाज के वंचित तबकों के लिए कार्य कर रहे हैं। यह संगठन मध्यप्रदेश के गोंडवाणा क्षेत्र के पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों एवं गैरआदिवासियों के वंचन एवं गरीबी के मुद्दों पर 1996 से कार्य कर रहा है। गाँधी के अहिंसावादी सिद्धांतों पर चलने वाला यह संगठन इस क्षेत्र में जाति, वर्ग एवं लिंग के आधार पर होने वाले उस उत्पीड़न की ओर ध्यान आकर्षित करने में काफी मुखर रहा है, जो इस क्षेत्र में रहने वाले समुदायों के अंदर एवं समुदायों के बीच के सामाजिक संबंधों पर आधारित है। अपनी जाँच के दौरान जाँच–दल ने हरदा शहर में जिला कलेक्टर, पुलिस एसडीओ, डीएफओ, वन अधिकारियों एवं वाचरों, संगठन के कार्यकर्त्ताओं, विधानसभा चुनाव में प्रमुख प्रतिद्वंदी पार्टी कांग्रेस के उम्मीदवार और छोटे–छोटे आदिवासी गाँवों के बहुत सारे लोगों से मुलाकात की। यह रिपोर्ट जाँच–दल द्वारा किए गए सर्वेक्षण के आधार पर तैयार की गई है।

विवरण	टिमरनी	हरदा	खिड़किया	कुल
कुल आबादी (2001)	1,45,980	1,90,398	1,38,538	4,74,916
शहरी क्षेत्र की आबादी (2001)	19,183	64,497	17,487	1,01,167
राजस्व ग्राम	135	196	195	526
वन ग्राम	44	1	––	45
कुल गाँव	179	197	195	571
कुल पुलिस थाने	2	2	2	6
कुल पटवारी	33	43	41	117
कुल 'पटेल'	109	187	170	466
कुल 'कोटवर'	147	196	161	504
क्षेत्रफल (वर्ग किमी)	822.09	998.41	823.82	2644.32
कुल पंचायत	73	71	67	211
कुल कृषि भूमि (हेक्टेयर)	56,101	65,605	53,015	1,74,721
सिचिंत भूमि (हेक्टेयर)	41,820	48,275	20,623	1,10,718

1. क्षेत्र का विवरण

उत्तर में नर्मदा नदी तथा दक्षिण में सतपुड़ा रेंज से घिरे भारतीय प्रायद्वीप के मध्य में स्थित हरदा जिला मैदान, पहाड़ एवं जंगलों के साथ प्रकृति की विभिन्नता को समेटे हुए है। उत्तर में सिहौर जिला, उत्तर–पूर्व में होशंगाबाद, दक्षिण–पूर्व में बैतूल, दक्षिण तथा पश्चिम में खण्डवा तथा उत्तर–पश्चिम में देवास, हरदा की सीमा का निर्धारण करता है। कभी गोंडवाण क्षेत्र का हिस्सा रह चुके इस जिले के उत्तर से दक्षिण की ओर जाने पर प्राकृतिक छटा एवं भू–भाग बदलता जाता है। उत्तर में जहाँ मैदानी निम्न भूमि देखी जा सकती है, जो काफी उपजाऊ है, वहीं पश्चिमी भाग मुख्य रूप से वनभूमि को समाहित किए हुए है। 1998 में होशंगाबाद जिले में से अलग करके बनाया गया हरदा जिला तीन विकास खंडों (ब्लॉक) – हरदा, टिमरनी और खिरकिया में विभाजित है। जिले का पूरा क्षेत्रफल 2644.32 वर्ग किलो मीटर है, जिसका 94 प्रतिशत भाग ग्रामीण है। 1425.36 वर्ग किलो मीटर का वन क्षेत्र जिले के कुल क्षेत्रफल का 57 प्रतिशत है। इस वन क्षेत्र का 20 प्रतिशत गाँवों की ज़मीन पर है।

हरदा वन–मण्डल का 50 प्रतिशत इलाका मुख्य रूप से सगौन की तरह के पेड़ वाले उष्णकटिबन्धी शुष्क पर्णपाती वन से आच्छादित है। असल में यह सहभागी वन प्रबंधा का 'हरदा मॉडल' ही था जिसने विश्वबैंक द्वारा निधिबद्ध (आर्थिक सहायता प्रदत्त) समाजिक वनप्रबंधन विद्या – संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम (1994–1999) के लिए पथप्रदर्शक के रूप में कार्य किया था। यहाँ कुल प्रबंधित वन क्षेत्र 142,536 हैक्टेयर है जिसमें 67 प्रतिशत सुरक्षित वन (रिजर्व फॉरेस्ट) हैं। पूरे देश में यही एक मात्र जिला है जहाँ निजी वन–सम्पदा भी है। सगौन के पेड़ वाले जंगल वन–विभाग के लिए राजस्व का एक प्रमुख स्रोत हैं, जो हरदा में इमारती लकड़ी के स्थानीय उद्योगों की आपूर्ति के लिए इसकी नियमित रूप से निलामी करता है। हरदा में तकरीबन 60 आरा मिलें चल रही हैं जो कि सीधे वन–विभाग से लकड़ी खरीदती हैं।

जिले की कुल जनसंख्या 474,416 है, जिसमें से 79 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं। इनमें से एक तिहाई आदिवासी हैं जिनमें कोरकू और गोंड प्रमुख आदिवासी समूह

हैं। 16 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जातियों की है। अनुसूचित जनजाति और अनुसूजित जाति का वितरण पूरी तरह से असमान है। ग्रामीण इलाके के 513 गाँवों में से 99 में आदिवासियों की आबादी 99 प्रतिशत है और 225 गाँवों में 50 प्रतिशत से ज़्यादा है। इसी तरह 197 गाँवों में 5 प्रतिशत कम दलित है जबकि 113 गाँवों में 25 प्रतिशत से ज़्यादा दलित हैं।

2. भूमि एवं आय से संबंधित मुद्दे

ऐतिहासिक रूप से यह क्षेत्र 20वीं शताब्दी में अंग्रेजों का नियंत्रण स्थापित नहीं होने तक मुगलों एवं पेशवाओं के अधीन था। एक समय (16वीं शताब्दी से पूर्व) यहाँ अधिकांशतः सिर्फ गोंड आदिवासी ही बसे हुए थे। आगे चलकर उत्तर–पश्चिमी भाग के दूसरे क्षेत्रों से व्यापक तादाद में लोग यहाँ आए। इससे यहाँ जनसांख्यिकी पारगमन (परिवर्तन) हुआ जिसने गोंड आदिवासियों को सूदूर जंगल के क्षेत्रों में धकेल दिया। और जब एक बार अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार खेती हो गया तो आबादी में यह बदलाव किंचित् स्थायी हो गया। कृषि योग्य भूमि की बहुलता तथा आबादी की अल्पसंख्यता की वजह से पेशवाओं या ब्रिटिश शासकों में से किसी ने भी औपचारिक जंमीदारी भूमि अधिकार की व्यवस्था को शुरू नहीं किया। ज़मीन साहूकार, व्यापारी, गाँव के मुखिया आदि जैसे अस्थायी मालगुजरों को पट्टे पर दी गई तथा इन्हें राज्य की तरफ से राजस्व इकठ्ठा करने का प्राधिकार दे दिया गया। लम्बे समय तक पट्टे ने वंशागत अधिकार की परिपाटी को मजबूत किया था, जिसे अंग्रेजी हुकुमत ने 1854 में मालगुजर वर्ग को बेचने योग्य मालिकाना हक देकर औपचारिक रूप से अनुमोदित कर दिया।

कई मालगुजर 10–12 जोत–भूमि (प्लॉट या खेत) के मालिक थे तथा एक जोत–भूमि औसतन 140 एकड़ की होती थी। उदाहरण के लिए हरदा परगणा के तुलसीराम शुकुल के पास 150 से कम जोत–भूमि नहीं थी तथा 4,500 एकड़ कृषि–भूमि पर उसका कब्जा था। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि भूमि का तकरीबन 29 प्रतिशत हिस्सा अकेले गैर–कृषक ब्राह्मण मालगुजरों के नियंत्रण में था। परंपरागत रूप से साहूकारी (सूद–खोरी) करने वाले मारवाड़ियों एवं बनियों ने भी नए मालगुजरों के रूप में विशिष्टता प्राप्त कर ली। कृषिकीयों एवं गैर–कृषिकीयों के बीच का अंतर लगभग समाप्त हो चुका था। जैसा कि 1905 में एक बंदोबस्त अधिकारी ने लिखा, 'जिले में मुश्किल से ही कोई साहूकार बचा हो जो कि जमींदार नहीं हो, और कई सारे जमींदारों ने, यहाँ तक कि कृषकीय जातियों के भी, पैसे एवं अनाज के व्यापार को खेती के काम के साथ मिला लिया है।' राजस्व इकठ्ठा करने के मालिकाना अधिकार प्राप्त कर के, जो संपत्ति के 40 प्रतिशत से कम होता था, ये साहूकार लगान को बढ़ाने में सफल रहे, 'इतनी ऊँची सीमा तक कि यदि इसे आखिरकार चुकाया भी जाय तो वे इसे भारी कठिनाईयों के साथ ही चुका सकें'। 1891 में जे. बम्पफेल्ड फूलर ने बताया कि काश्तकार (पट्टाधारी) कर्ज़ में इस कदर फँस चुँके हैं कि उनकी स्थिति लगभग 'दासता' जैसी हो गई है) (*द कैम्ब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया,* 79–82)।

खेती के अलावा, इस क्षेत्र के सागौन और साल के जंगल भी व्यावसायिक रूप से बेहद महत्वपूर्ण साबित हुए। 1861 में आदिवासी नेता सरदार भूभूत सिंह की गिरफ्तारी एवं जबलपुर जेल में फाँसी देने के बाद 1862 में बोरी वन क्षेत्र को भारत का प्रथम सुरक्षित वन क्षेत्र घोषित कर दिया गया।

(क) मैदानी इलाकों में रोज़गार, मज़दूरी एवं रहन–सहन

मैदानी इलाके का सबसे प्रमुख व्यवसाय खेती है। मैदान के निम्न क्षेत्र की गहरी जलोढ़ मिट्टी के साथ तवा बाँध से पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। कुल कृषि क्षेत्र के 76 प्रतिशत हिस्से में साल में दो फसलें होती है। खरीफ के मौसम में 94 प्रतिशत भूमि पर सोयाबीन की फसल उगाई जाती है। रबी के मौसम में 63 प्रतिशत ज़मीन पर चना और 35 प्रतिशत ज़मीन पर गेहूँ उगाया जाता है।

हरदा शहर के बिल्कुल पास में एक अनाज मंडी है जो राज्य की सबसे बड़ी अनाज मंडी में से एक है। यह तैयार खाद्यान्न के बाजार में पहुँच को सुनिश्चित करता है। यहाँ ज़मीन की कीमत 40,000 से 50,000 प्रति एकड़ के बीच है। कृषि पैदावार की उच्च उत्पादकता के कारण ज़मीन का स्वामित्व एवं नियंत्रण अमीरी का एक प्रमुख निर्धारक है। भूमि के स्वामित्व को अधिकतम 30 एकड़ तक निश्चित करने वाले लेंड सिलिंग एक्ट के प्रावधान के बावजूद समुदायों के बीच ज़मीन का स्वामित्व एवं वितरण अपेक्षाकृत रूप से असमान ही दिखाई देता है। ऐतिहासिक रूप से मैदानी इलाकों में मालगुजर की संस्था के द्वारा समुदायों के बीच भूमि के हस्तांतरण के लिए पहले उत्तराधिकार की अपनी परिपाटी थी। इसमें कोई ऐसा व्यक्ति जो लिए गए कर्ज़ को चुकाने में अक्षम हो जाता था अपने भू–स्वामित्व का अधिकार साहूकार को हस्तांतरित कर देता था। भूमि के हस्तांतरण की यह पद्धति आजादी के बाद भी नहीं बदली तथा वैसे ही कायम रही। जोड़िआमऊ (बैतुल जिले) के सरपंच के अनुसार गाँव की लगभग आधी आबादी भूमिहीन परिवारों की है जो भूमि पर मालिकाना हक रखने वाले लोगों के लिए मुख्य कृषिकीय श्रमशक्ति या खेतिहर मज़दूरों को तैयार करता है।

अपनी जाँच के दौरान पीयूडीआर के जाँच दल को कई ऐसे परिवारों के उदाहरण मिले जो लैंड सिलिंग एक्ट द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक ज़मीन के मालिक हैं। जिले का कुल कृषि क्षेत्र 1658 वर्ग किलोमीटर है जिसे अगर कुल परिवारों में बांटा जाए तो हर परिवार के पास 2.5 हैक्टेयर कृषि भूमि आएगी। हरदा के वर्तमान विधायक भारतीय जनता पार्टी के नेता कमल पटेल ने जबलपुर उच्च न्यायालय में स्वयं यह स्वीकार किया कि इस जिले में उसके पास 200 एकड़ से ज्यादा कृषि भूमि है। भू–स्वामित्व का यह अन्यायपूर्ण प्रारूप, दूसरे अन्य कारकों जैसे व्यापक स्तर पर ग्रामीण ऋणग्रस्तता, पर्याप्त एवं पक्के रोज़गार के अवसरों की कमी, गरीबी आदि की वजह से और भी विषम हो जाता है। छोटे किसानों के लिए खेती की नई पद्धति जिसमे उच्च स्तर के संसाधनों की गहन आवश्यकता होती है, टिक पाना मुश्किल होता है और वे निजी साहूकारों के पास ज़मीन

को गिरवी रखकर कर्ज़ लेने के लिए बाध्य हो जाते हैं। स्थिति में लगभग न के बराबर सुधार होने तथा सूद की दर अत्यधिक होने की वजह से इनके लिए कर्ज़ को चुका पाना मुश्किल हो जाता है और वे अपनी ज़मीन से हाथ धो बैठते हैं।

हरदा जिले के रातातलाई गाँव के निवासियों ने इस क्षेत्र में प्रचलित, ज़मीन हथियाने की इस पद्धति की पुष्टि की। रातातलाई गाँव में काफी अधिक यानी तकरीबन 700 परिवार हैं। और यह भाजपा के वर्तमान विधायक कमल पटेल का पैतृक गाँव भी है। कमल पटेल के चाचा हरि शंकर के बारे में बताया जाता है कि वह स्वयं 70–75 एकड़ भूमि का मालिक है। रातातलाई के सरपंच राम भरोस ने इस गाँव में ज़मीन को लेकर जाट (साहूकारों) एवं कोरकू समुदायों के बीच मनमुटाव की रिपोर्ट की पुष्टि की। उसने इस बात की पुष्टि की कि खेती के लिए खाद एवं मँहगे बीज आदि के लिए निवेश की बढ़ती ज़रूरत के लिए किसानों को अपनी ज़मीन गिरवी रखनी पड़ रही है। साहूकारों ने किसानों को 50,000 रु. प्रति एकड़ के हिसाब से 3 रु. प्रति सैकड़ा प्रति माह की ब्याज दर पर कर्ज़ दिए, जिससे सालाना ब्याज दर 43 प्रतिशत बनती है। खेती के अलावा विवाह, दाह–संस्कार आदि से संबंधित खर्चों के लिए भी किसानों को अपनी संपत्तियों को गिरवी रखने पर मजबूर कर देते हैं। और इस तरह से वे ज़मीन के छोटे टुकड़े साहूकारों के हाथों गवां बैठते हैं।

कर्ज़ न चुका पाने के गंभीर परिणाम होते हैं। ये स्वामित्व की अस्थायी समाप्ति तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसमें लोग व्यक्तिगत आर्थिक स्वतंत्रता भी खो देते हैं जो इससे कहीं ज़्यादा और स्थायी बलिदान है। भूमिहीनों के लिए अपरिहार्यतः इसका परिणिति साहूकार के खेत एवं घर में अनगिनत घंटों के बेगार के रूप में होती है। मिटींग में मौजूद ग्रामवासियों ने इस तथ्य की पुष्टि की कि उनमें से कई लोगों, उनकी पत्नियों एवं बच्चों को न केवल साहूकारों के खेतों में लम्बे समय तक काम करना पड़ता है बल्कि उनके घरों एवं घरों के आस–पास सब तरह के कार्य करने पड़ते हैं। बंधुआ मज़दूरी के इस बंधन से मुक्त होने का प्रयास भी काफी कठिन एवं असंभव जैसा साबित हुआ। जब पीयूडीआर की टीम हरदा में ही थी उसी दौरान हिंसा की तीन अलग–अलग घटनाओं की जानकारी हमें मिली, जिनमें बेगारी के शिकंजे को तोड़ कर निकलने के संदेह के आधार पर संबंधित व्यक्तियों की हत्या कर दी गई थी। हालांकि जहाँ पुलिस ने इन दोनों के बीच किसी तरह का संबंध होने से इंकार किया लेकिन स्थानीय कांग्रेसी नेता श्री हेमंत टाले ने ज़मीनी स्तर पर जाट एवं बिस्नोई समुदायों के बीच विद्यमान आर्थिक विरोधाभासों तथा इन तीनो मामलों की समानताओं की तरफ ध्यान आकर्षित किया।

संवैधानिक रूप से किसी व्यक्ति से बिना किसी वेतन के बेगार के रूप में जबरदस्ती काम करवाना एक फौजदारी अपराध के है, फिर भी ऐसा कर रहे लोगों के खिलाफ बहुत ही कम आपराधिक मामले दर्ज़ हुए हैं। चौंकाने वाली बात है कि जब पीयूडीआर ने इस संदर्भ में प्रश्न किया तो जिला प्रशासन साफ इंकार कर दिया कि जिले में किसी तरह की बेगारी चल रही है। जिला कलेक्टर श्रीमति रेणु पंत ने यह दलील दी कि उन्होंने हाल ही में चार्ज लिया है वहीं मिटिंग में उपस्थित दूसरे अधिकारी सब डिवीजनल पुलिस ऑफ़ीसर (एसडीपीओ) श्री जितेन्द्र पवार ने तथ्यों को मरोड़ते हुए बलात् श्रम (बेगार) के सामंतवादी व्यवहार को उचित ठहराते हुए एक तर्क दिया। उनका तर्क था कि यदि एक व्यक्ति ने कर्ज़ लिया हो और चुकाने में असमर्थ है तो साहूकार को यह पूरा अधिकार है कि वह उस व्यक्ति के संसाधनों एवं संपत्तियों को ले ले और ऐसे तरीके अपनाए कि वह काम छोड़कर भाग न सके। ज़ाहिर है कि एसडीपीओ को देश के कानून की कोई भनक भी नहीं है जिस के अनुसार कर्ज़ की वसूली के लिए किसी भी तरह का बल प्रयोग नहीं किया जा सकता।

इस तरह से कृषि भूमि के स्वामित्व की स्थानीय अर्थव्यवस्था में शक्ति के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका है। चुँकि काम में लगे अधिकांश मज़दूर या तो पड़ोसी गाँवों एवं जिलों के भूमिहीन लोग हैं और रोज़गार के अवसरों का गंभीर अभाव है इसलिए अनियमित खेतिहर मज़दूरी के रूप में रोज़गार की माँग काफी है। मौसम के अनुसार प्रवास एक समान्य बात हो गई है, बुआई एवं कटाई के समय सबसे ज़्यादा काम उपलब्ध होता है। खेतिहर मज़दूरों के लिए दैनिक मज़दूरी 60–70 रुपये है। महिलाओं को पुरूषों की तुलना में औसतन 10 रुपये कम मज़दूरी दी जाती है। लोगों में नरेगा के अंतर्गत रोज़गार की संभावना को लेकर बहुत कम उत्साह देखा गया। ऐसा इसलिए है कि इसमें नियमित रूप से काम मिलने की कोई गारंटी नहीं है। ग्रामीणों के अनुसार नरेगा में साल में 8–10 दिन ही निश्चित रोज़गार मिल पाता है।

खेती के अलावा, लोगों को हरदा की अनाज की मंडी में भी कुली के रूप में रोज़गार मिलता है। इसे हम्माल कहा जाता है तथा इसमें पीस दर व्यवस्था से भुगतान किया जाता है अर्थात् पैसों का भुगतान प्रतिदिन लादी और उतारी जाने वाली बोरियो की संख्या के अनुसार। पहलें एक बोरी को लादने के लिए 5 रुपये मिलते थे। लेकिन 2008 में समाजवादी जनपरिषद् द्वारा लोडर्स के साथ मिलकर किए गए एक सफल धरने एवं प्रदर्शन के बाद इस मज़दूरी में बढ़ोतरी हुई एवं इसे 7 रुपये किया गया।

हरदा शहर में 60 आरा मिलें भी हैं। ये मिलें बहुत से लोगों के रोज़गार का साधान हैं। मुख्य तौर पर ये मिलें पटेल समुदाय के लोगों के पास हैं। इन मिलों में काम करने वाले अधिकांश लोग इस क्षेत्र से बाहर के हैं। खासतौर पर, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के बहुत ज्यादा लोग इन मिलों में काम करते हैं। ये मज़दूर कारखाने के परिसर में ही रहते हैं और हर रोज़ तकरीबन 12–14 घंटे काम करते हैं। इन्हें सरकार द्वारा तय की गई न्यूनतम मज़दूरी की तुलना में बहुत ही कम मज़दूरी मिलती है। औसतन मज़दूरों को 50–55 रूपये के बीच दैनिक मज़दूरी मिलती है। पीयूडीआर की टीम ने बहुत से कारखानों का दौरा किया। अपने दौरे के दौरान टीम ने पाया कि इन कारखानों में मज़दूरों की सुरक्षा के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई है। ये मज़दूर आरे की मशीन के नज़दीक काम करते हैं जहाँ मशीन से निकलने वाली धूल सीधे इनके चेहरे पर पड़ती है। दरअसल, ये मज़दूर आरे की मशीन से निकलने वाले धूल के बीच ही दिन भर काम करते हैं।

यहाँ के व्यापारियों की लॉबी की राजनीति में अच्छी खासी पैठ है। आरा मिलों के

मालिकों की एक एसोसिएशन है जिसका अध्यक्ष नटवर पटेल है। नटवर पटेल खुद लकड़ी का बहुत बड़ा व्यापारी है तथा इसके पास सबसे ज्यादा आरा मिलें हैं। इन आरा मशीनों में काम करने वाले आदिवासियों एवं दलितों को ये लोग बहुत कम मज़दूरी देते हैं। माँगने पर इन्हें काम से निकालने की धमकी दी जाती है। चुँकि इन मजदूरों ने समाजवादी जनपरिषद द्वारा हम्मालों के लिए किए गए आंदोलन एवं इसकी सफलता को देखा था इसीलिए ये भी भी संगठन से जुड़ने लगे। नटवर पटेल का राजनीतिज्ञों और स्थानीय नागरिक प्रशासन के अधिकारियों – दोनों में ही बहुत ज़बर्दस्त प्रभाव है। नटवर पटेल का बीजेपी के विधायक कमेल पटेल से काफी घनिष्ठ संबंध है। इसीलिए 2008 के चुनाव के समय जब इसके मजदूर समाजवादी जनपरिषद का प्रचार करने लगे तो नटवर पटेल ने इन्हें धमकाया एवं बीजेपी का प्रचार करने के लिए कहा। इस संदर्भ में चुनाव आयोग में भी शिकायत की गई तथा नटवर पटेल को एक दिन के लिए हिरासत में भी लिया गया था। इसके बाद जब फरवरी 2009 में समाजवादी जनपरिषद् के बैनर तले आरा मिल के मजदूरों ने अपनी न्यूनतम मज़दूरी एवं दूसरे अधिकारों के लिए आन्दोलन करना शुरू किया तो मिलमालिकों की एसोसिएशन ने जिला कलेक्टर को एक धमकी भरा ज्ञापन सौंपा जिसमें कहा गया था कि यदि 48 घंटे के अंदर समाजवादी जनपरिषद की नेता शमीम मोदी को गिरफ़्तार नहीं किया जाता है तो सभी मिल बंद कर दी जाएंगी। इसके बाद आश्चर्यजनक रूप से दूसरे ही दिन शमीम मोदी को गिरफ़्तार कर लिया गया। उल्लेखनीय है कि शमीम मोदी की गिरफ़्तारी उन आरोपों के अंतर्गत की गई थी जो लगभग 2 साल पूराने थे। अतः इस तरह से शमीम मोदी की यह गिरफ़्तारी प्रशासन के ऊँचे अधिकारियों और आरा मिल मालिकों की सांठगाठ को दर्शाता है।

फॉरेस्ट एक्ट, 2006 के क्रियान्वन के लिए मध्य प्रदेश सरकार की कार्य योजना की समय सूची

20 जनवरी–5 फरवरी, 2008	वन अधिकार समिति के प्रारूप के बारे में फसले और अध्यक्ष व सचिव के चुनाव के लिए ग्राम सभा की बैठक
10–15 फरवरी, 2008	गाँव के रिहायिशों के दावों की प्रक्रिया की शुरूआत
फरवरी– अप्रैल, 2008	दावों का लिया जाना
मई– जून, 2008	सबूतों और दावों को दर्ज़ करना, उनकी पुष्ठि करना और वन अधिकार समितियों द्वारा ज़मीन के नक्शे तैयार करना
जुलाई 2008	ग्राम सभा द्वारा अनुमोदन और अपनी रिपोर्ट को सब डिवीज़नल कमिटी को सौंपना
जुलाई–अगस्त, 2008	सब डिवीज़नल कमिटी द्वारा अनुमोदन और रिपोर्ट को जिला समिति को सौंपा जाना
अगस्त – सितम्बर, 2008	अंतिम अनुमोदन और दावों का नोटिफिकेशन

स्थानीय प्रशासन के ऊँचे अधिकारियों के इन व्यापारियों से सांठ–गांठ का एक और उदाहरण यह है कि हरदा में लकड़ियों के व्यापार में न्यूनतम मज़दूरी कानूनों या श्रम मानकों की पूरी तरह से उपेक्षा की जाती है। बावजूद इसके स्थानीय अधिकारियों ने कभी भी श्रम कानूनों के उल्लंघन की कोई परवाह नहीं की। बहरहाल, हाल में संगठन द्वारा दायर किए गए एक मामले में जबलपुर उच्च न्यायालय ने (2083/09) हरदा के स्थानीय अधिकारियों को इस संबंध में एक निर्देश जारी किया, जिससे मज़दूरों को कुछ राहत मिली। श्रम विभाग को भी मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी न देने, दस्तावेजों की अनियमितता और काम के दौरान घायल हुए मज़दूरों को मुआवज़ा न देने के मुद्दों पर बहुत से केस दायर करने पड़े।

(ख) वन क्षेत्रों में भूमि अधिकार और जीविका

हरदा जिले का दक्षिणी भाग मुख्य रूप से वन भूमि है। इसमें **सागौन और सखुआ** के पेड़ ज्यादा मात्रा में पाए जाते हैं। वन क्षेत्र में बसे गाँव मुख्य रूप से दो श्रेणियों में विभाजित हैं। ये दो श्रेणियाँ हैः राजस्व–गाँव और वन–गाँव। वन–गाँव जंगल की ज़मीन पर बसे हुए हैं और इन्हें वन विभाग के अधिकार–क्षेत्र में आने वाले विशेष नियंत्रक कानून के अंतर्गत बसाया गया। इस जिले में मुख्य रूप से 45 वन–गाँव और 522 राजस्व गाँव हैं। वन–गाँवों के कल्याण और विकास की ज़िम्मेदारी वन विभाग की है। इससे इन गाँवों में रहने वाले लोगों के ऊपर वन विभाग की नियंत्रण बहुत ज्यादा बढ़ गया है। वन विभाग वनीय और गैर–वनीय भूमि की सीमा रेखा तय कर सकता है, भूमि उपयोग की सीमा तय कर सकता है, ज़रूरी वनोपजों के संग्रहण के संबंध में वन अधिकारों का नए सिरे से आबंटन कर सकता है, और यह वनोपजों की चोरी के संबंध में लोगों पर जुर्माना भी लगा सकता है। 2006 के वन अधिकार अधिनियम में यह स्पष्ट प्रावधान है कि अधिकारों के आबंटन की प्रक्रिया के संबंध में ग्राम–सभा नोडल एजेंसी की भूमिका निभाएगी। लेकिन वन विभाग ने ग्राम–सभा को इस तरह की शक्ति नहीं दी है। दरअसल, इससे यह पता चलता है कि वन विभाग ज़मीनी स्तर पर मनमानी करने की शक्ति अपने पास रखना चाहता है।

ढेगा और ऊँचाबरारी नाम के दो गाँवों की अपनी यात्रा के दौरान जाँच दल ने यह पाया कि इन गाँवों में वन भूमि पर नियंत्रण को लेकर तनाव बढ़ता जा रहा है। 2006 के वन अधिकार अधिनियम में स्पष्ट रूप से यह प्रावधान किया गया है कि अनुसूचित जनजातियों के जो लोग 13 दिसम्बर 2005 से पहले से किसी वन भूमि पर बसे हुए हैं उन्हें ज़मीन का पट्टा दिया जाएगा। इसी तरह, अन्य वनवासी समुदायों के बारे में यह प्रावधान किया गया है कि यदि 13 दिसम्बर 2005 से पहले उनकी तीन पीढ़ियाँ किसी

अनुसूचित जनजाति व अन्य परंपरागत वन निवासी (वन अधिकारों की मान्यता) अधिनियम, 2006

3. (1) इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों और परंपरागत वन निवासियों के सभी वनभूमि पर निम्नलिखित वन अधिकार होंगे, जो व्यक्तिगत या सामुदायिक भूधृति या दोनों को सुरक्षित करते हैं, अर्थात : —

(क) वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजाति और अन्य परंपरागत वन निवासियों के किसी सदस्य या किन्हीं सदस्यों द्वारा निवास के लिए या जीविका के लिए स्वयं खेती करने के लिए व्यक्तिगत या सामूहिक अभियोग के अधीन वन भूमि को धारित करने और उनमें रहने का अधिकार;

(ख) निस्तार के रूप में सामुदायिक अधिकार चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हों, जिनके अंतर्गत तत्कालिक राजाओं के राज्यों, ज़मींदारी या ऐसे अन्य मध्यवर्ती शासनों में प्रयुक्त अधिकार भी सम्मिलित हैं;

(ग) गौण वन उत्पादों के, जिनका गांव की सीमा के भीतर या बाहर पारंपरिक रूप से संग्रह किया जाता रहा है स्वामित्व संग्रह करने के लिए पहुँच, उनका उपयोग और व्ययन का अधिकार रहा है;

(घ) यायावरी या चारागाहों समुदायों की मत्स्य और जलाशयों के अन्य उत्पाद, चरागाह (स्थापित और घुम्मकड़ दोनों) के उपयोग या उनपर हकदारी और पारम्परिक मौसमी संसाधनों तक पहुंच के अन्य सामुदायिक अधिकार;

(ड़) वे अधिकार, जिनके अंतर्गत आदिम जनजाति समूहों और कृषि पूर्व समुदायों के लिए गृह और आवास की सामुदायिक भू–धृतियां भी हैं;

(च) किसी ऐसे राज्य में, जहाँ दावे विवादग्रस्त हैं, किसी नाम पद्धति के अधीन विवादित भूमि में या उस पर के अधिकार;

(छ) वन भूमि पर हक के लिए किसी स्थानीय प्राधिकारण या किसी राज्य सरकार द्वारा जारी पट्टों या धृतियों या अनुदानों के सपरिवर्तन के अधिकार;

(ज) वनों के सभी वन ग्रामों, पूराने आवासों, असर्वेक्षित ग्रामों और अन्य ग्रामों के बसने और संपरिवर्तन के अधिकार, चाहे वे राजस्व ग्रामों में लेखबद्ध हों, अधिसूचित हों अथवा नहीं;

(झ) ऐसे किसी सामुदायिक वन संसाधन का संरक्षण, पुनरुज्जीवित या संरक्षित या प्रबंध करने का अधिकार, जिसकी वे सतत् उपयोग के लिए परंपरागत रूप से संरक्षा और संरक्षण कर रहे हैं;

(ञ) ऐसे अधिकार, जिनको किसी राज्य की विधि या किसी स्वशासी जिला परिषद या स्वशासी क्षेत्रीय परिषद् की विधियों के अधीन मान्यता दी गई है या जिन्हें किसी राज्य की संबंधित जनजाति की किसी पारंपरिक या रूढ़िगत विधि के अधीन जनजातियों के अधिकारों के रूप में स्वीकार किया गया है;

(ट) जैव विविधता तक पहुंच का अधिकार और जैव विविधता तथा सांस्कृतिक विविधता से संबंधित बौद्धिक संपदा और पारंपरिक ज्ञान का सामुदायिक अधिकार;

(ठ) कोई ऐसा अन्य पारंपरिक अधिकार जिसका, यथास्थिति, वन में निवास करने वाली उन अनुसूचित जनजातियों या अन्य परंपरागत वन निवासियों द्वारा रूढ़िगत रूप से उपभोग किया जा रहा है, जो खंड (क) से खंड (ट) में वर्णित हैं, किन्तु उनमें किसी प्रजाति के वन्य जीव का शिकार करने या उन्हें फंसाने या उनके शरीर का कोई भाग निकालने का परंपरागत अधिकार नहीं है;

(ड) यथावत पुनर्वास का अधिकार, जिसके अंतर्गत उन मामलों में आनुकल्पिक भूमि भी है जहाँ अनूसूचित जनजातियों और अन्य परंपरागत वन निवासियों को 13 दिसम्बर, 2005 के पूर्व किसी भी प्रकार की वनभूमि से पुनर्वास के उनके वैध हक प्राप्त किए बिना अवैध रूप से बेदखल या विस्थापित किया गया हो;

4(5) जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, किसी वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजाति या अन्य परम्परागत वन निवासियों का कोई सदस्य उसके अधिभोगाधीन वन भूमि से तब तक बेदखल नहीं किया जाएगा या हटाया नहीं जाएगा जब तक कि मान्यता और सत्यापन प्रक्रिया पूरी नहीं हो जाती है

6(1) ग्राम सभा को, ऐसे किसी व्यष्टिक या सामुदायिक वन्य अधिकारों या दोनों की प्रकृति और सीमा को अवधारित करने के लिए प्रक्रिया आरंभ करने का प्राधिकार होगा जो इस अधिनियम के अधीन इसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर वन में निवास करने वाली अनुसूचित जनजातियों और अन्य परंपरागत वन मनिवासियों को, दावे स्वीकार करते हुए, उनके समेकन और सत्यापन तथा ऐसी रीति में, जो विहित की जाए, सिफारिश किए गए प्रत्येक दावे के क्षेत्र को अंकित करते हुए, मानचित्र तैयार करके दिए जा सकेंगे और तब ग्राम सभा उस आशय का संकल्प पारित करेगी तथा उसके पश्चात् उसकी एक प्रति उपखंड स्तर की समिति को अग्रेषित करेगी

6(5) राज्य सरकार, उपखंडस्तर की समिति द्वारा तैयार किए गए वन अधिकारों के अभिलेख पर विचार करने और उनका अंतिम रूप से अनुमोदन करने के लिए एक जिला स्तर की समिति का गठन करेगी

6(6) वन अधिकारों के अभिलेख पर जिला स्तर की समिति का विनिश्चय अंतिम और आवद्धकर होगा

6(7) राज्य सरकार, वन अधिकारों को मान्यता देने और उन्हें निहित करने की प्रक्रिया को मानीटर करने और ऐसी विवरणियों और रिपोर्टों को, जो उस अभिकरण द्वारा मांगी जाएं, नोडल अभिकरण को प्रस्तुत रिने के लिए एक राज्य स्तर की मानीटरी समिति का गठन करेगी।

ज़मीन पर बसी हुई हैं (एक पीढ़ी को 25 साल के बराबर माना गया अर्थात् इन परिवारों को यह साबित करना है कि वे पिछले 75 सालों से उसी ज़मीन पर रह रहे हैं) तो उन्हें भी ज़मीन का पट्टा और सामुदायिक अधिकार दिए जाएँगे। लेकिन हमारी टीम ने यह पाया कि ढेगा और ऊँचाबरारी – दोनों ही गाँवों में अभी तक भी ज़मीन की पहचान और अधिकारों के नियमितिकरण की प्रक्रिया शुरू नहीं हुई है। 2006 के वन अधिकार अधिनियम की धारा 6 के अनुसार ग्राम–सभा को यह अधिकार है कि वह व्यक्तिगत अधिकारों की प्रकृति और सीमा को तय करने की प्रक्रिया की शुरूआत करे। इस कानून में ग्राम–सभा को यह अधिकार दिया गया है कि वह ज़मीन के अधिकार से संबंधित हर दावे पर विचार करे, दावों के सही या गलत होने को सत्यापित करे और हर स्वीकृत दावे के लिए ज़मीन का नक्शा तैयार करे। इस कानून में यह प्रावधान कि इसके बाद ग्राम–सभा एक प्रस्ताव पारित करके स्वीकृत दावों को सब–डिवीज़न स्तर की समिति को भेजे और यह समिति इन प्रस्तावों पर फिर से विचार करने के बाद इन्हें जिला स्तरीय समिति के पास भेजे जो कि अधिकारों के बारे में अंतिम सहमति देगी।

ढेगा और ऊँचाबरारी– दोनों ही गाँवों में जानबूझकर पिछले डेढ़ सालों में ग्राम–सभा की इस तरह की कोई बैठक नहीं बुलाई गई है। इसका नतीजा यह हुआ है कि गाँव के लोगों में वन–भूमि पर अपने अधिकारों के संबंध में बहुत ज़्यादा भ्रम की स्थिति बनी हुई है। बहुत सारे परिवार ‘वन भूमि’ पर पिछली कई पीढ़ियों से खेती करते आ रहे हैं। लेकिन इस अनिश्चितता के कारण वे अपनी इस पारंपरिक ज़मीन पर पिछले साल से खेती नहीं कर पा रहे हैं। पीयूडीआर की टीम ने ऐसे खाली पड़े खेत भी देखे जिनका उपयोग हाल तक इन गाँवों में रहने वाले लोग अपनी फसल उपजाने के लिए किया करते थे। हमने यह पाया कि कुछ क्षेत्रों में जहाँ खेती हुई थी वहाँ वन विभाग के कर्मचारी आए और उन्होंने खेतों को खोद दिया, या रोपी गई फसलों को बर्बाद कर दिया। दरअसल, वन विभाग नहीं चाहता कि ये लोग इस ज़मीन पर खेती करें। यह देखते हुए कि इस क्षेत्र में कुपोषण की समस्या है, इस बात को कतई स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि वन विभाग इस तरह से फसलों को बर्बाद करे।

शुरूआत से वन भूमि पर वन विभाग का ही कब्जा रहा है। दरअसल 2006 के वन अधिकार अधिनियम ने वन विभाग की शक्तियों में कटौती की है। इसके कारण उत्पन्न हुई नई स्थिति में वन विभाग ने वनों पर अपने पारंपरिक प्राधिकारों पर फिर से ज़ोर देना शुरू कर दिया है। मसलन, हरदा डिवीज़न में वन विभाग ने एक नई संस्था *वन चौकी* की स्थापना की है। यहाँ वनोपजों की चोरी और जंगल में दूसरी तरह के जुर्म करने वाले लोगों को पूछताछ के लिए बंदी बनाकर रखा जाता है। गवासेन, जहाँ इस तरह की एक चौकी बनी है, के डिप्टी रेंजर से एक छोटी सी मुलाकात से हमें इस बात का अंदाज़ा हुआ कि इस तरह की चौकियों की स्थापना का मकसद क्या है। डिप्टी–रेंजर के अनुसार एक चौकी में दो या तीन कमरे होते हैं और यहाँ वन विभाग के तीन या चार कर्मचारी स्थाई रूप से रहते हैं। डिप्टी–रेंजर ने यह माना कि ये वन चौकियाँ विभाग द्वारा स्थापित की गई सबसे नई संस्थाएँ हैं और इनका मकसद यह है कि वन विभाग सही तरीके से अपने कर्त्तव्यों को पूरा कर पाए। वन विभाग इन वन चौकियों के द्वारा जंगल की सुरक्षा और संरक्षण की विभिन्न गतिविधियों में समन्वय करना चाहता है।यहाँ इस क्षेत्र के जंगलों के बारे में एक–दो बातों को स्पष्ट कर देना ज़रूरी है। पिछले कई वर्षों से वन विभाग द्वारा इस बात पर ध्यान दिया गया है कि इस क्षेत्र में सागौन और सखुआ के पेड़ों को लगाया जाए। जंगली जानवरों या पौधों को सहारा देने वाले दूसरे कई छोटे पेड़–पौधों का इस क्षेत्र में अभाव है। पेड़ों को सीधे एक लाइन में लगाया गया है। आस–पास किसी तरह का कोई दूसरा छोटा पेड़–पौधा नहीं है जो इनके ‘विकास’ में रुकावट डाले। गवासेन के डिप्टी–रेंजर ने इस बात का उल्लेख किया कि सागौन और सखुआ के विकास के लिए छोटे पेड़–पौधों की नियमित रूप से सफाई की जाती है। तथ्य यह है कि वन विभाग इस पूरी प्रक्रिया में जंगल की जैव–विविधता को खत्म कर रहा है और वन विभाग के किसी अधिकारी को इसका अहसास भी नहीं है। ऐसा लगता है कि वन विभाग का दिमाग पूरी तरह से व्यावसायिक हितों पर ही केन्द्रित है। वन विभाग सिर्फ उन्हीं पेड़ों को लगाता है जिनकी बाज़ार में ऊँची कीमत मिले। वन विभाग के लिए सागौन और सखुआ के पेड़ फायदे का सौदा हैं इसीलिए वन विभाग भविष्य में ज़्यादा मुनाफा कमाने की चाहत में अपनी अधिकांश ऊर्जा इनकी सुरक्षा में लगाता है।

हरदा में विश्व–बैंक की मदद से वर्ष 1994–99 के बीच संयुक्त वन प्रबंधन के अंतर्गत हरदा सोशल फॉरेस्ट्री कार्यक्रम को अपनाया गया। ऐसा लगता है कि यह कार्यक्रम अपना प्रभाव छोड़ने में सफल रहा है। मध्य प्रदेश फॉरेस्ट्री प्रोजेक्ट (या मध्य प्रदेश वानिकी कार्यक्रम) के बारे में समझौता करने के दौरान विश्व–बैंक, कानूनों और नियमों में कुछ निश्चित बदलाव कराने में सफल रहा। दरअसल, ये बदलाव जंगलों की सुरक्षा और जंगलों पर निर्भर स्थानीय समुदायों के हितों के खिलाफ थे। पहला, पेड़ों की 31 प्रजातियों को पारगमन नियंत्रण (ट्रांज़िट रेगूलेशन) से मुक्त कर दिया गया। दूसरा, यह प्रस्तावित किया गया कि भूमि राजस्व संहिता (लैंड रेवेन्यू कोड) में बदलाव किया जाएगा जिससे निजी ज़मीन पर पेड़ों को काटने पर लगी रोक को हटाया जा सके। इन दोनों ही बदलावों के कारण निजी संपत्ति वाली ज़मीन पर भारी मात्रा में जंगलों की कटाई की गई। तीसरा, जंगल के 5 किलोमीटर से ज़्यादा दूर बसे गाँवों के लिए *निस्तार* सुविधा को खत्म कर दिया गया। इस तरह पारंपरिक रूप से इन संसाधनों पर निर्भर बहुत से लोगों को बाज़ार–मूल्य पर वनोपज खरीदने के लिए मजबूर कर दिया गया। जबकि बाज़ार–मूल्य पर यह चीज़ें खरीदना इन लोगों के सामर्थ्य के बाहर है।

संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम का लागू होना ग्राम वन सुरक्षा समिति (विलेज फ़ॉरेस्ट प्रोटेक्शन कमिटी) पर निर्भर था। सरकार और विकास की राशि देने वाली एजेंसियों को इसी समिति द्वारा ‘वन प्रबंधन’ और गाँव के स्तर पर विकास का कार्यक्रम चलाना था। इस कार्यक्रम का मकसद यह था कि अमूमन नौकरशाही के काम करने की शैली के रूप में होने वाले वन सुरक्षा कार्यक्रमों में स्थानीय समुदायों को भी भागीदार बनाया जाए। लेकिन हरदा में संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम को काफी अलग और नकारात्मक अर्थ में लागू किया गया। वन विभाग ने ढेगा एवं ऊँचाबरारी – दोनों ही गाँवों में फॉरेस्ट गार्डों

आदिवासियों के खिलाफ वन अधिकारियों की तानाशाही

हरदा में वन विभाग द्वारा आदिवासियों पर किए जा रहे जुल्म का एक उदाहरण इनके उपर लगाए जाने वाले केसों से देखा जा सकता है। इन गरीब आदिवासियों के ऊपर कई सारे केस दर्ज़ हैं। इनमें से कई ऐसे मामले हैं समाधेय(कंपाउंडेबल) प्रकृति के हैं एवं इनमें जमानत मिल सकती है। लेकिन इन मामलों को जानबूझकर गैर–जमानती बनाने के लिए इनमें ऐसी धाराएं भी जोड़ दी गई हैं जिनसे ज़मानत मिलना अंसंभव हो जाए। उदारण के लिए जून 2007 में ढेगा एवं उँचाबरारी गाँव के कई लोगों पर वन कानून से अलग हटकर लोक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम (द प्रिवेंशन ऑफ़ पब्लिक प्रौपर्टी एक्ट 1984) के तहत मामला दर्ज़ किया गया। इसके आधार पर उँचाबरारी के बृजलाल को 9 जून से 26 जून 2007 तक तथा ढेगा गाँव के गंगाराम को 17 जून से 26 जून 2007 तक न्यायिक हिरासत में रखा गया। उल्लेखनीय है कि 26 जून को विशेष सत्र न्यायाधीश, हरदा के आदेश पर इन्हें इस आधार पर छोड़ा गया कि वनविभाग को लोक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 3 एवं 4 के तहत अभियोजन का अधिकार नहीं है।

लोक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 3 के उपधारा 2 में ऐसी संपत्तियों की सूची दी गई है जिसको क्षति या नुकसान पहुँचाने पर सजा का प्रावधान है। इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा 2 में संपत्तियों की सूची इस प्रकार है – (क) जल, प्रकाश, बिजली या उर्जा के उत्पादन, वितरण या आपूर्ति के संबंध में प्रयुक्त कोई भवन, प्रतिष्ठान या अन्य संपत्तियाँ, (ख) कोई तेल प्रतिष्ठान, (ग) कोई मल संकर्म, (घ) कोई खान या कारखाना, (ड़) लोक परिवहन या दूरसंचार का कोई साधन अथवा उनसे संबंधित प्रयुक्त कोई भवन, प्रतिष्ठान या अन्य संपत्ति।

उपरोक्त संपत्तियों की सूची में वनभूमि या वनसंपत्ति का कोई उल्लेख नहीं है अतः इस आधार पर विशेष सत्र न्यायालय ने व्यवस्था दी कि यहाँ इनके विरूद्ध लोक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम की धारा 3 एवं 4 के तहत मामला दर्ज़ करने का कोई आधार नहीं बनता है। साथ ही जिला सत्र न्यायाधीश ने मामले की सुनवाई करते हुए आनन्द कुमार गोइंका बनाम मध्यप्रदेश राज्य (2001, एम.पी.एच.टी. 252) के मामले में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय की जबलपुर पीठ द्वारा सुनाए गए निर्णय का भी उल्लेख किया। इस मामले में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने यह फैसला दिया था कि वन विभाग को को केवल भारतीय वनअधिनियम 1927 में वर्णित अपराधों पर कार्यवाही का अधिकार है, लोक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम 1984 की धारा 3 एवं 4 के तहत वर्णित अपराधों पर कार्यवाही का अधिकार नहीं है। वन विभाग लोक संपत्ति क्षति निवारण अधिनियम के तहत केवल तभी कार्यवाही कर सकता है जब इसके लिए उसे मजिस्ट्रेट द्वारा अधिकृत किया गया हो अन्यथा यह कार्यवाही अकृत्य एवं शुन्य है।

इस प्रकार मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय की जबलपुर पीठ के इस निर्णय को आधार बनाते हुए सत्र न्यायालय ने वन विभाग की कार्यवाही को अनुचित बताया। यह दर्शाता है कि किस प्रकार हरदा जिले में वन विभाग द्वारा मनमाने तरीके से आदिवासियों पर जुल्म किए जा रहे हैं। आदिवासियों के खिलाफ कार्यवाही करने के दौरान वन अधिकारी उच्च न्यायालय के निर्णयों की भी अवहेलना करने में संकोच नहीं करते।

की एक नई श्रेणी बनाई गई जिसे 'फॉरेस्ट वाचर' कहा जाता है। स्थानीय समुदायों में से ही कुछ लोगों को 'वाचर' बनाया जाता है। इनका काम गाँव के लोगों की गतिविधियों पर नज़र रखना होता है। ऊँचाबरारी गाँव में पीयूडीआर को 'फॉरेस्ट वाचर' की टीम मिली। वे एक ज़मीन के टुकड़े पर बैठे हुए थे और उन्होंने यह दावा किया कि उन्होंने इस ज़मीन को 'अतिक्रमण करने वालों' से मुक्त कराया है।

असल में, हमें 'अतिक्रमण' शब्द के गलत इस्तेमाल पर भी ध्यान देना चाहिए क्योंकि इसका विभिन्न समुदायों के सदस्यों के व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकारों पर सीधा प्रभाव पड़ता है। वन अधिकार अधिनियम 2006 में वनों में निवास करने वाले या इस पर निर्भर लोगों की सभी श्रेणियों (अर्थात् अनुसूचित जनजाति और गैर जनजाति) के लोगों को जंगल की ज़मीन और इसके संसाधनों पर व्यक्तिगत और सामूहिक उपयोग का हक दिया गया है। इन अधिकारों में जंगल की ज़मीन को धारित करने और इस पर व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से निवास करने और जीविका के लिए खेती करने, निस्तार, और पारंपरिक रूप से गाँव की सीमा के भीतर या इसके बाहर वनोपजों को एकत्रित करने और उन्हें बेचने के अधिकार भी शामिल हैं। इसके अलावा, इसमें लोगों को मछली और पानी से जुड़े दूसरे उत्पादों पर अधिकार और खानाबदोश और पशुचारण करने वाले समुदायों को चराई और पारंपरिक रूप से विभिन्न मौसमों से जुड़े संसाधनों पर अधिकार दिया गया है (सेक्शन 3(1))।

दरअसल, इस कानून में यह प्रावधान है कि गैर अनुसूचित जनजाति या अन्य वन निवासी समुदायों को व्यक्तिगत या सामुदायिक अधिकार पाने के लिए यह साबित करना होगा कि 13 दिसम्बर 2005 से पहले तीन पीढ़ियों से वे उसी ज़मीन पर रह रहे हैं। एक पीढ़ी को 25 साल के बराबर माना गया। अर्थात् उन्हें यह साबित करना होगा कि वे अभी जहाँ रह रहे हैं, वहाँ वे पिछले 75 सालों से बसे हुए हैं। निश्चित रूप से इस प्रावधान के कारण बहुत सारे लोगों को आसानी से अतिक्रमक की संज्ञा दी जा सकती है। वन विभाग और वन समुदायों – में ज़मीन पर अपना कब्ज़ा करने के लिए एक तरह की होड़ लगी हुई है। आमतौर पर, लोगों के घर और उनके खेत एक–दूसरे से बहुत ही दूर–दूर हैं। लोगों के पास ज़मीन पर अपना स्वामित्व साबित करने का कोई लिखित प्रमााण न होने की स्थिति में सिर्फ दूसरों की गवाही को ही ज़मीन पर उनके दावों को सही या गलत मानने के लिए प्रयोग में लाया जा सकता है। इस कारण, स्थानीय समुदाय बहुत ज़्यादा नुकसान की स्थिति में हैं। पीयूडीआर की टीम ने जिन गाँवों का दौरा किया वहाँ बातचीत के दौरान 'अतिक्रमण' का मुद्दा बार–बार उभरकर सामने आया। इन गाँवों में लोगों ने जाँच–दल को वन विभाग द्वारा हाल में बनाए गए नए खंबे दिखाये। ये खंबे जंगल की सीमा बताने के लिए बनाए गए हैं। दूसरी ओर, वन विभाग के गार्डों और 'वाचरों' ने भी यह शिकायत की कि गाँव के लोगों ने हाल के समय में जंगल की ज़मीन का अतिक्रमण किया है।

इस कारण, भूमि अधिकारों के मसले पर आदिवासियों के अलग–अलग गाँवों और गाँवों के भीतर विभिन्न समुदायों के बीच तनाव की स्थिति को साफ तौर पर अनुभव किया

शोषणकारी संबंध / 2001 की जनसुनवाई

2001 में श्रमिक आदिवासी संगठन ने वन अधिकारों के संबंध में एक जनसुनवाई आयोजित की जिसमें सहभागी वानिकी प्रक्रिया की खामियों और वन विभाग के भ्रष्टाचार और शोषण के मामलों को सामने लाया गया। ट्रिब्युनल द्वारा तैयार की गई अंतिम रपट के प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं।

बेगारी : ढेगा गाँव की बहुत सी महिलाओं ने पैनल को बताया कि 2–3 महीनों पहले तक, गाँव के हर घर में से एक महिला ने बारी–बारी से वन गार्ड के घर बिना पैसों के काम करके बिताया था। काम में पानी लाना, खाना बनाना, बर्तन धोना, झाड़ू लगाना और घर की लिपाई शामिल था। जब 10 अप्रैल को फॉरेस्ट कंज़र्वेटर के गाँव आने पर जब महिलाओं ने उससे इसकी शिकायत की तो फॉरेस्ट गार्ड ने श्रमिक आदिवासी संगठन पर उनके और महिलाओं के आपसी रिश्ते खराब करने का आरोप लगाया।

रिश्वत : अपने निस्तार के अधिकार के लिए हर परिवार को हर साल बैलगाड़ी भरकर भूसा, एक मुर्गी, 4–5 किलो अनाज और अन्य चीज़ें वन गार्ड को देनी पड़ती हैं। इसके अलावा पर्दे, चटाई और घर का अन्य समान बनाने के लिए बांस लेने के लिए उन्हें गार्ड को हर साल एक टाट और एक झिंजा देने पड़ते हैं। ऐसा सभी गाँवों में देखा गया।

घर बनाने या घर की मरम्मत, खेती के औज़ार बनाने के लिए लकड़ी काटने के लिए 500 से 5000 रु. की रिश्वत देनी पड़ती है। हरदा मंडल के 45 गरीब वन–गाँव वन अधिकारियों को निस्तार के अधिकार की पूर्ति के लिए सालाना करीबन 45 लाख रु. की रिश्वत दे रहे हैं।

जा सकता है। वन विभाग प्रत्येक वाचर को 3000 रूपये मासिक वेतन देता है। गाँव के बाकी लोग इन्हें सरकारी ऐजेंट के रूप में देखते हैं जिनका काम अपने ही समुदाय के लोगों की जासूसी करना है। हमने यह पाया कि बहुत से 'वाचर' एक ही गाँव के अलग–अलग आदिवासी समुदायों से हैं। वन विभाग के 'वाचर' और गाँव के दूसरे आम लोगों की आर्थिक स्थिति में बहुत ज़्यादा असमानता आ गई है। इसने 'वाचरों' और गाँव के आम लोगों के बीच के टकराव को बढ़ावा दिया है। गाँव के आम लोगों के लिए जंगल में चराई, व्यक्तिगत उपयोग के लिए लकड़ियों के इकट्ठा करने पर लगी पाबंदी और निस्तार अधिकारों में कटौती ने भी विवादों को जन्म दिया है। उदारहण के लिए ऊँचाबरारी गाँव में कुल 60 घर हैं। यहाँ 40 लोगों को 'वाचरों' के रूप में नियुक्त किया गया है। जंगलों की सुरक्षा के नाम पर समुदाय के लोगों को बाँटने की इस नीति और इसके लिए ग्राम वन सुरक्षा समिति के बजट के उपयोग का भी विरोध किया जाना

चाहिए। दरअसल, लंबे समय में इस तरह की नीति अपनाने के बहुत से दुष्प्रभाव भी होंगे। मसलन, इससे सामाजिक और आर्थिक असमानतएं बढ़ी हैं, समुदायों के बीच स्थानीय जुड़ाव टूटा है। दरअसल, ये सारी बातें वन अधिकार कानून के लक्ष्यों की मूल भावना के विपरीत हैं।

3. श्रमिक आदिवासी संगठन

आदिवासियों के वन और भूमि अधिकारों के मुद्दों पर संघर्ष करने के लिए 1996 में श्रमिक आदिवासी संगठन की स्थापना की गई। श्रमिक आदिवासी संगठन इस क्षेत्र में काम करने वाले कुछ संगठनों में से एक है। पिछले वर्षों में इसके सदस्यों की संख्या में बहुत अधिक बढ़ोतरी हुई है। इसके अलावा, इसके कार्य क्षेत्र का भी विस्तार हुआ है और यह समय के साथ साथ अधिक मुद्दे उठाने लगा है। इस कारण, हाल के वर्षों में इसके नेतृत्व और कार्यकर्त्ताओं से सत्ताधारी राजनीतिक और प्रशासनिक अभिजनों का सीधा टकराव भी बढ़ा है। श्रमिक आदिवासी संगठन बैतूल, हरदा और खंडवा जिलों में सक्रिय हैं। यह इन जिलों में बेगार, मज़दूरी की उचित रकम न दिए जाने, जाति और लिंग आधारित दमन और व्यापक भ्रष्टाचार आदि से जुड़े मुद्दों को उठाता रहा है। इस संगठन की रणनीति अहिंसा और सत्याग्रह के गाँधीवादी आदर्शों पर आधरित हैं। संगठन गाँधी, लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण की विचारधारा मानता है। श्रमिक आदिवासी संगठन एक अधिक व्यापक संगठन समाजवादी जन परिषद् से जुड़ा हुआ है। समाजवादी जन परिषद् देश के 14 राज्यों में सक्रिय है।

पीयूडीआर की टीम श्रमिक आदिवासी संगठन की गतिविधियों के बारे जानने के लिए इनके कार्यकर्त्ताओं से हरदा स्थित इनके कार्यालय में मिली। यहाँ मंगल सिंह ने संगठन के इतिहास और कार्यों के बारे में विस्तार से बताया। मंगल सिंह बैतूल जिले के जोड़िआमऊ गाँव के निवासी हैं और ये संगठन के सबसे पुराने कार्यकर्त्ताओं में से एक हैं। मंगल सिंह ने यह बताया कि आदिवासियों को उन मामलों में भी जमानत नहीं दी जाती है, जिनमें आमतौर पर जमानत देने का प्रावधान है और उन्हें ऐसे आरोपों में गिरफ़्तार कर लिया जाता है जिनके बारे में वे कुछ भी नहीं जानते। मसलन, 2001 में वन विभाग ने दानवखेड़ा (जिला बैतूल) में आदिवासियों के घर जला दिए। तकरीबन दो सालों के संघर्ष के बाद आखिरकार 2003 में वन अधिकारियों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज़ की गई। लेकिन दूसरी तरफ इसका बदला लेने के लिए, में, 2004 में गाँव वालों के खिलाफ 10 केस दर्ज़ कर दिये गये। ये सभी मामले ज़मीन पर झोंपड़ी आदि बनाने से संबंधित थे और जमानती थे। लेकिन फिर भी गिरफ़्तार लोगों को तकरीबन दो हफ़्तों तक जेल में बंद रखा गया। इसके बाद उन्हें इस शर्त पर व्यक्तिगत मुचलके पर रिहा किया जाना था कि हर व्यक्ति 5000 रूपये जमा कराएगा। ये मामले ज़मीन पर झोपड़ी आदि बनाने से संबंधित थे। ज़मानत की रकम जुटाने के लिए इनके घरों से बरामद चावल एवं महुआ आदि की कीमत को जोड़कर जो राशि बनी वह ज़मानत की रकम से 600–700 रूपये कम रह गई तो उसके लिए केस लगा दिया। इस शर्त पर ज़मानत

मिली कि एक निश्चित तिथि के अंदर पट्टा लाएँगे, लेकिन यहाँ लोगों के पास पट्टे नहीं थे। पट्टे केवल रेवेन्यू लेन्ड पर है, फॉरेस्ट लेन्ड पर नहीं है। दानवखेड़ा गाँव के लोग इस माँग को पूरा करने में असमर्थ थे। इसलिए उन्होंने अपने खिलाफ गिरफ़्तारी के वारंट को लंबित पड़े रहने दिया। दूसरी तरफ आदिवासियों का घर जलाने के आरोपी वन अधिकारी जुलाई 2004 में छूट गए। इसी तरह के एक दूसरे मामले में जुलाई 2005 में पूरे भंडारपानी गाँव (जिला बैतूल) को जला दिया गया। जब आदिवासी वन विभाग के अधिकारियों की करतूतों की शिकायत करने गए तो पूरी बस्ती को एक बार फिर से उजाड़ दिया गया और गाँव के लोगों को बंदी बना लिया गया। इस मामले में वन विभाग के जिन अधिकारियों पर आरोप थे, वे मई 2005 में छूट गए।

कानून तोड़ने वाले अधिकारियों के खिलाफ आदिवासियों की शिकायतें बहुत कम दर्ज़ होती हैं। बैतूल जिले के घोरपदमल और काबरा गाँवों के आदिवासियों के साथ एक अजीब वाकया हुआ। वे वन विभाग के उन भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ शिकायत करने गए थे, जिन्होंने उन्हें उनके हिस्से की मज़दूरी नहीं दी थी। लेकिन थाने में उनकी सुनवाई नहीं हुई, उल्टे उनके खिलाफ 20 केस दर्ज़ कर दिए गए। जिन धाराओं के अंतर्गत इन पर आरोप लगाए गए वे जमानती थे। लेकिन इसके बावजूद गिरफ़्तार लोगों को जमानत नहीं दी गई और उन्हें तकरीबन 45 दिनों तक जेल में रखा गया। यहाँ तक कि बच्चों को भी नहीं बख्शा गया। बैतूल जिले के मालीखेड़ा गाँव के एक केस में 11 छोटे बच्चों को जेल भेज दिया गया। इन बच्चों पर यह आरोप था कि उन्होंने जंगल की ज़मीन पर झोपड़ी बनाने में अपने माता–पिता की मदद की है। हालांकि, इसी गाँव में राज्य सरकार की एक केबिनेट उप–समिति ने जंगल की ज़मीन पर स्थित शराब की दुकानों को तोड़ने पर इस आधार पर स्टे लगा दिया कि इन दुकानों से सरकार को अतिरिक्त राजस्व हासिल करने में मदद मिलती है।

क्षेत्र का सामाजिक आर्थिक पिछड़ापन संगठन के संघर्ष का एक प्रमुख केन्द्र बिन्दु रहा है। संगठन पूरी निष्ठा से विभिन्न तरीकों द्वारा किए जा रहे दमन और शोषण को उजागर करता रहा है जिसका सामना यहाँ के लोग कर रहे हैं।

2006 में वन अधिकार अधिनियम के लागू किए जाने के बाद से ज़मीन के अधिकार को नियमित किया जाना संगठन की एक मुख्य मांग बन गई है। संगठन लगातार एक्ट के प्रावधानों के अनुसार, समुदायों के ज़मीन के और अन्य अधिकारों के अनुमोदन को लेकर नागरिक प्रशासन की लापरवाही के खिलाफ आवाज़ उठाता रहा है। 6 सितम्बर 2009 को चीरापाटला गाँव में हरदा के अलग–अलग गाँवों के संगठन के कार्यकर्त्ताओं की एक बैठक में (जिसमें पीयूडीआर भी शामिल था), यह पुष्टि की गई कि लोगों के दावों के अभिज्ञान और सत्यापन के लिए ग्राम सभाओं की कोई बैठकें नहीं हुई हैं। लोगों को यह भी स्पष्ट नहीं है कि यह प्रक्रिया कैसे होनी है। एकदम साफ है कि प्रशासन ने कोई स्पष्ट तरीका घोषित नहीं किया है।

उदाहरण के लिए प्रशासन ने कुछ गाँवों में कुछ लोगों को फॉर्म बांटे और कुछ को नहीं। हरदा की कलैक्टर ने स्वयं स्वीकारा कि उन्होंने 6 अगस्त 2009 को कुछ परिवारों को नोटिस जारी किए थे कि वे अपने निवास और जोत का प्रमाण दाखिल करें। परन्तु सितम्बर में जब लोगों से बात की गई तो अधिकांश परिवारों को ऐसा कोई नोटिस नहीं मिला था, जबकि नोटिस का जवाब देने की आखिरी तारीख यानी 22 अगस्त पहले ही निकल चुकी थी। जहाँ ये फॉर्म बांटे भी गए थे, वहाँ भी पीयूडीआर ने पाया कि वे अधिनियम के प्रावधानों से एकदम उलट थे। हिन्दी में छपे इन फॉर्मों में लोगों से कहा गया था कि रिहायिश के प्रमाण के रूप में चुनाव पहचान पत्र या राशन कॉर्ड जैसे कागज़ात जमा करवाएं। जबकि एक्ट में साफ़ है कि जो आदिवासी समुदाय तीन पीढ़ियों से यहाँ रह रहे हैं उन्हें ऐसे कोई कागज़ात दाखिल करने की ज़रूरत नहीं है, और यह प्रावधान ठीक इसलिए रखा गया था क्योंकि लोगों के पास ऐसे कागज़ात नहीं होते। हमारे जाँच दल ने पाया कि कुछ मामलों में उन लोगों को मालिकाना पट्टे दे दिए गए हैं जिन्होंने कोई दावे दाखिल ही नहीं किए हैं। इससे भी लोगों की मुसीबतें बढ़ी हैं। उदाहरण के लिए ढेगा गाँव के रामदास, जो कि एक कोरकू आदिवासी हैं, उस समय हैरान रह गए जब उन्हें जिला कलैक्टर के हस्ताक्षर वाला एक पत्र मिला (न. 1561/हरदा/टिमरनी/बोरी/ढेगा/39), जिसमें उन्हें ज़मीन का पट्टा दिया गया है। रामदास को समझ ही नहीं आ रहा कि उन्हें ज़मीन के वे दो प्लॉट क्यों और किस तरह दिए गए हैं जो कि उस ज़मीन से कोई मेल नहीं खाते जिसपर वे असल में खेती करते आ रहे हैं। असल में वे पांच प्लॉटों पर खेती करते आ रहे हैं और जो पट्टा उन्हें मिला है उसमें केवल दो का ज़िक्र है। इन दो प्लॉटों में से एक का भी आकार उनके अपने प्लॉटों से मेल नहीं खाता। गाँव के सभी लोग तो हैरान हैं ही कि क्यों उनमें से केवल एक व्यक्ति को इस तरह का कागज़ मिला है बल्कि रामदास को भी नहीं समझ आ रहा कि वे किस तरह से उन्हें दिए गए इस पट्टे का प्रतिवाद करें।

किसी को भी यह नहीं पता कि कैसे क्या करें और यह भ्रम प्रशासन के असहयोगी रुख के कारण और भी बढ़ जाता है और इससे क्षेत्र में एक गैरज़रूरी तनाव पैदा हो गया है। 11 जुलाई 2007 की शाम को रेंजर ओ.पी.पटेल समेत 50 वन गार्ड ढेगा गाँव पहुँचे और उन्होंने गाँव वालों को प्रताड़ित करना शुरू कर दिया। गाँव वालों ने रेंजर से मुकाबला किया, उसे बांध दिया और रात में चिरापाटला आकर फोन से हरदा के पुलिस सुपींटेडेंट को सूचित कर दिया। अगले दिन पुलिस आयी और रेंजर ओ.पी. पटेल को ले गयी। लेकिन दूसरी तरफ गाँववालों की शिकायत पर कार्यवाही करने के बजाय, श्रमिक आदिवासी संगठन के कार्यकर्त्ताओं के खिलाफ रहटगाँव पुलिस स्टेशन में एफआईआर दर्ज़ हो गई। इस पुलिस स्टेशन के पुलिस वालों को यह ज़रूरी नहीं लगा कि वे संगठन के कार्यकर्त्ताओं द्वारा वन विभाग के अधिकारियों के खिलाफ की गई शिकायत स्वीकार कर लें। जब हरदा के पुलिस स्टेशन में भी यह शिकायत दर्ज़ नहीं हुई तो घायल लोगों ने स्थानीय सत्र न्यायालय में मामला दर्ज़ करने का निर्णय लिया। इसके बाद जो हुआ वह और भी चौंका देने वाला था। संगठन की एक प्रमुख नेता शमीम मोदी पर घायल कार्यकर्त्ताओं का अपहरण करने और पुलिस को उन्हें अस्पताल ले जाने से रोकने का आरोप लगा दिया गया। पीयूडीआर की टीम ने ढेगा गाँव में संगठन की

सुनीता एवं उसके परिवार पर प्रशासन का कहर

15 वर्षीय कोरकू आदिवासी लड़की सुनीता ढेगा निवासी फूलवती एवं रामभरोस की बेटी है तथा नौवीं कक्षा में पढ़ती है। उसके माता पिता श्रमिक आदिवासी संगठन/समाजवादी जनपरिषद के लिए कार्य करते हैं जिसकी नेता शमीम मोदी हैं। इनका परिवार वन विभाग और प्रशासन की नज़र में किरकिरी रहा है क्योंकि ये संगठन आदिवासियों को जागरूक करके प्रशासन की कमियों को उजागर करता रहा है।

13 जुलाई 2009 को सुबह तकरीबन 10 बजे सुनीता अपनी चचेरी बहन एवं सूबेदार की 11 वर्षीय बेटी गीता के साथ अपने घर के पास वाले खेत में सोयाबीन की फसल की निंदाई कर रही थी। इसी समय डिप्टी रेंजर अवध नारायण इवने तथा नाकेदार संतराम कलमे (उँचाबरारी बीट) एवं अशोक करोची (ढेगा बीट) 70–80 वाचरों के साथ आया। इन लोगों ने सुनीता एवं उसकी बहन को खेत में काम करने से यह कह कर मना किया कि यह जंगल की ज़मीन पर अतिक्रमण है। जब सुनीता ने जवाब में कहा कि वह इस खेत पर काफी दिनों से खेती कर रही है और यह अतिक्रमण नहीं है तो नाकेदार संतराम कलमे ने उसका हाथ पकड़कर खींचने का प्रयास किया तथा उसे उठाकर ले जाने की बात की। सुनीता चिल्लाने लगी जिससे गाँव की कुछ औरतें आ गयीं। उन्हें देखकर नाकेदार ने सुनीता का हाथ छोड़ दिया। इसके बाद गाँव की औरतों के साथ इन लोगों की बहस भी हुई। शोर–शराबे की आवाज़ सुनकर पास के खेत में काम कर रहे सुनीता के नाना सुखराम भी वहाँ आ गए। इसके बाद वन विभाग के अधिकारी वाचरों के साथ दूसरे खेत की तरफ चले गए। मामले को शांत देखकर सभी लोग अपने–अपने काम में लग गए।

लेकिन वन विभाग के अधिकारी एवं वाचर वहीं पास के खेत में बैठे रहे एवं उन्होंने मोबाइल से पुलिस को बताया कि उन्हें गाँव के लोगों ने बंधक बना लिया है और दरांती से मारा भी है। शाम के 3–4 बजे शाम के ये लोग बोरी गाँव की तरफ चले गए।

इसके बाद शाम के करीब 6 बजे बहुत सारे वन अधिकारी और पुलिस वाले तकरीबन 9–10 गाड़ियों–डग्गों में भरकर आए। पुलिस वाले सुनीता के घर में घुस गए और सामान फेंकने लगे। महिला और पुरुष पुलिस कर्मियों दोनों ही ने सुनीता को लात–जूते से बुरी तरह पीटा। पुलिस वालों ने सुबेदार को भी पकड़ लिया और मारने लगे। गीता अपने पिता सूबेदार को बचाने के लिए उनसे लिपट गयी तो उसे भी महिला पुलिस ने 2–3 थप्पड़ मारे। शोर सुन कर सुखराम भी वहाँ आ गए तो पुलिस वालों ने उन्हें भी पकड़ लिया और उनके सिर पर एक लट्ठ मारा जिससे उनके सर से खून निकलने लगा और वे बेहोश हो गए। ये लोग सुखराम को वहीं छोड़कर सुनीता एवं सुबेदार को लेकर जाने लगे। जीप के कुछ दूर जाने के बाद सुनीता के रोने चिल्लाने और बार बार यह कहने से कि वह स्कूल में पढ़ती है उन्होंने सुनीता को छोड़ दिया और सूबेदार को लेकर चले गए।

घटना के अगले दिन श्रमिक आदिवासी संगठन व समाजवादी जनपरिषद के कार्यकर्त्ता राजेन्द्र गढ़वाल, सुनीता, गीता एवं सुखराम के साथ भोपाल जाकर डीजीपी से मिले एवं उन्हें लिखित में शिकायत सौंपी। साथ ही इसकी प्रतियाँ मुख्यमंत्री, पुलिस महानिरीक्षक होशंगाबाद रेंज; पुलिस अधीक्षक हरदा एवं श्री कंसोटिया, संभागायुक्त, नर्मदा पुरम संभाग, होशंगाबाद को भी भेजीं। शाम को 6 बजे हमदीया अस्पताल में सुखराम का डॉक्टरी परीक्षण कर एमएलसी भी करवाया गया, जिसके अनुसार उनके सिर में किसी कठोर चीज़ से चोट लगने से घाव होने का ज़िक्र है।

21 जुलाई को अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक (अजाक–अनुसूचित जाति जनजाति कल्याण) वी.के. पंवार ने, पुलिस अधीक्षक (अजाक) होशंगाबाद रेंज एमएल सोलंकी को पत्र द्वारा 4 दिन के अंदर गाँव जाकर मामले की छानबीन कर विस्तृत रिपोर्ट सौंपने का आदेश जारी किया। इस पत्र में पुलिस महानिरीक्षक (अजाक) के साथ अतिरिक्त पुलिस महानिरीक्षक (अजाक) के शीघ्र ही दौरे पर जाने की भी बात की गई थी।

25 जुलाई को पुलिस अधीक्षक होशंगाबाद रेंज ने गाँव का दौरा करके सुनीता, गीता एवं सुखराम का बयान लिया तथा साथ ही संबंधित अधिकारियों के भी बयान लेकर अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक (अजाक) को रिपोर्ट सौंपी। इस रिपोर्ट में शिकायतकर्ताओं के बयानों और शिकायतों में छोटे मोटे अंतर्विरोधों को आधार बनाकर यह निष्कर्ष निकाल लिया गया कि वन विभाग के अधिकारियों को गाँव वालों ने बंधक बना लिया था और सुखराम ने खुद अपने सिर पर पत्थर मारे थे। सूबेदार पर वन कर्मचारियों को बंधक बनाने का आरोप लगा दिया गया।

सुनीता आज तक इस घटना के हादसे से नहीं उबर पाई है और वापस स्कूल भी नहीं जा सकी है। यह वही सुनीता है जिसका नाम पिछले साल अखबारों में इसलिए छपा था कि वह पहली आदिवासी लड़की थी जिसे आठवीं की बोर्ड की परीक्षा में 60 प्रतिशत से अधिक नम्बर मिले थे।

कार्यकर्त्ता फूलवती से भी मुलाकात की जिनके अपहरण का आरोप शमीम मोदी पर लगाया गया है। फूलवती ने टीम को स्पष्ट किया कि जब वह न्यायालय में शिकायत दर्ज़ करने जा रही थी तो न्यायालय के गेट के पास उन्हें पुलिस ने जबरन उठा लिया था। इस संदर्भ में संगठन के कार्यकर्त्ताओं ने पीयूडीआर की टीम को वह तस्वीर भी दिखायी जिसमें न्यायालय के गेट के पास शमीम के साथ जाती हुई फूलवती को पुलिस जबरन उठा रही है। शमीम मोदी पर फूलवती के अपहरण की अपनी इस मनगढंन्त कहानी में पुलिस को यह समझाने की ज़रूरत नहीं है कि आखिर शमीम अपने ही संगठन की महिलाओं का अपहरण क्यों करेंगी।

इस साल जुलाई से ढेगा और ऊँचाबरारी दोनों ही गाँवों में संगठन के कार्यकर्त्ताओं पर बार बार हमले हो रहे हैं और उन्हें पकड़ा जा रहा है। इन दोनों गाँवों से वन विभाग के मनमाने रवैये का प्रतिरोध होना इसका कारण है। 13 जुलाई 2009 को ढेगा गाँव की एक 15 वर्षीय लड़की सुनीता को खेत पर काम करते हुए, वन गार्डों द्वारा बुरी तरह से पीटा गया और एक वाहन में धकेल दिया गया। उसके चाचा ने, जो कि एक सूबेदार हैं, इसका प्रतिरोध किया तो उन्हें भी पकड़ लिया गया। वे अभी तक जेल में हैं। घटना के डेढ़ महीने बाद जब पीयूडीआर का दल सुनीता से मिला तो वह अभी भी बुरी तरह से भयभीत थी, शारीरिक रूप से कमज़ोर महसूस कर रही थी, वापस स्कूल नहीं जा पाई थी और अपनी सामान्य ज़िंदगी शुरू नहीं कर पाई थी। सुनीता की माँ फूलवती और पिता रामभरोस को भी, जो दोनों ही संगठन के कार्यकर्त्ता हैं, वन विभाग के अधिकारी प्रताड़ित करते रहे हैं (देखें बॉक्स)। इसी तरह से ऊँचाबरारी गाँव के लोगों ने भी बताया कि उन्हें किस तरह से परेशान किया जाता रहा है। डराना, झूठे मुकदमे दायर करना और गिरफ़्तारियाँ पिछले दो महीनों में बेहद बढ़ गई हैं। 20 जुलाई 2009 को ऊँचाबरारी गाँव के एक कार्यकर्त्ता सूबेदार को बैठक में जाते समय वन गार्डों ने घेर लिया, उनके साथ मारपीट की और उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। वे भी अभी तक जेल में हैं। इन दोनों मामलों में परिवारों को यह मालूम नहीं था कि उनके परिवार के इन सदस्यों के खिलाफ क्या आरोप लगाए गए हैं। इस तरह से मूलभूत जानकारी न दिए जाने से किसी भी अभियुक्त के लिए अपना बचाव कर पाना असंभव हो जाता है।

श्रमिक आदिवासी संगठन 2006 के वन अधिकार अधिनियम के ठीक से लागू न किए जाने की ज़ोरदार आलोचना करता रहा है और इसी कारण से प्रशासन संगठन के पीछे हाथ धो कर पड़ा हुआ है। अतिक्रमण हटाने के नाम पर भी अक्सर संगठन से जुड़े गाँव वालों पर ही निशाना साधा जाता है। संगठन के कार्यकर्त्ताओं के खिलाफ़ दर्ज़ मामले कभी भी हटाए नहीं जाते और न ही उन्हें कभी समाधेय किया जाता है, जैसा कि अन्य लोगों के मामलों में प्रायः किया जाता है। संगठन के समर्थक परिवारों को नरेगा के अंतर्गत काम नहीं दिया जाता। शारीरिक रूप से प्रताड़ित किया जाना तो कहानी का एक पहलू है, संगठन पर अन्य अप्रत्यक्ष तरीकों से भी हमला किया जाता है ताकि वह अपना काम अपने तरीके से न कर सके। उदाहरण के लिए संगठन पर सार्वजनिक बैठकें, धरना या प्रर्दशन करने को लेकर मामले दर्ज़ कर दिए जाते हैं, जिनमें लाऊड स्पीकर लगाने या अनुमति से ज़्यादा समय तक बैठक चलाने जैसे आरोप लगाए जाते हैं। पुलिस और जिला प्रशासन तक यह मानता है कि ऐसे आरोप राजनैतिक दलों के ऊपर कभी भी नहीं लगाए जाते। इसके अलावा शमीम मोदी और उनके पति अनुराग मोदी को जिला बदर करने की प्रक्रिया चलाने के लिए उनके खिलाफ़ दर्ज़ विभिन्न एफ़आईआर को इस्तेमाल किया गया। जब जिला कलैक्टर और एसडीओपी से इस बारे में पूछा गया तो वे दोनों इन दोनों नेताओं द्वारा किसी को शारीरिक नुकसान या किसी संपत्ति को नुकसान पहुँचाने की एक भी घटना नहीं बता पाए।

शमीम पर इस साल जो एक के बाद एक हमले हुए हैं वे असल में समाज के गरीब और वंचित लोगों में संगठन के बढ़ते हुए रुझान के कारण हुए हैं। समाजवादी जन परिषद की अध्यक्ष के रूप में शमीम ने पिछले कुछ चुनावों में हरदा की सीट से चुनाव लड़ती रही हैं। पिछले चुनावों में गिनती के आखिरी चरण में वे तीसरे नम्बर पर रहीं थीं। हालांकि संगठन अच्छी तरह से जानता है कि वह स्थापित राजनैतिक दलों से मुकाबला नहीं कर सकता परन्तु चुनाव प्रचार के दौरान अपने मुद्दों का प्रचार करने के लिए इस्तेमाल करता है। यह तथ्य कि शमीम मौजूदा राजनीतिक नेताओं के लिए एक सीधा खतरा पैदा कर रही हैं यह साबित करता है कि भ्रष्टाचार और शोषण के खिलाफ संगठन का आभियान कितना सफल रहा है। न्यूनतम वेतन दिए जाने और काम के बेहतर हालातों के लिए हरदा शहर में उनकी मांग से फैक्टरियों और व्यापारियों को काफ़ी परेशानी हुई है।

4. प्रमुख जाँच परिणाम

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हमारे दल के प्रमुख जाँच परिणाम और निष्कर्ष निम्नलिखित हैं।

(क) कई मामलों में जिला प्रशासन, पुलिस और वन विभाग की कार्यवाही गैरकानूनी, अन्यायी और मनमानीपूर्ण हैं।

(ख) ट्राईबल एंड अदर फॉरेस्ट डवैलर्स एक्ट 2006 के तहत लोगों को जो भी हक हासिल हुए हैं जिला प्रशासन उन्हें उलटने की कोशिश में लगा है।

(ग) वन विभाग आदिवासियों को उनके खेतों से बेदखल करके और उनकी फसलों को बर्बाद करके उनके अधिकारों का हनन कर रहा है।

(घ) ज्वाइंट फॉरेस्ट मैनेजमेंट कार्यक्रमों ने, जिनका बड़े ज़ोर शोर से प्रचार किया जा रहा है, सत्ता का एक ढांचा खड़ा कर दिया है, जिसमें वन विभाग का बोलबाला है, उसके पास ढेरों रूपया है और उसकी कोई जवाबदेही नहीं है।

(च) एक गाँव के निवासियों के विभिन्न वर्गों को एक दूसरे के खिलाफ भिड़ाने की नीति ने एक बहुत ही विस्फ़ोटक परिस्थिति बना दी है।

(छ) आदिवासियों को उनकी वनोभूमि से हटाने की यह नीति इन समुदायों को और अधि

ाक वंचन और कुपोषण की स्थिति में ढकेल देगी।

(ज) चुन चुन कर उन गाँव वालों पर हमले किए जा रहे हैं, पीटा जा रहा है या गिरफ़्तार किया जा रहा है जो श्रमिक आदिवासी संगठन के समर्थक हैं।

(झ) यह मानने के पर्याप्त कारण हैं कि मुंबई में शमीम मोदी पर जो हमला हुआ वह हरदा जिले में उनके कामों के कारण ही था।

पी.यू.डी.आर. मांग करता है कि –

1) वन विभाग द्वारा गाँवों पर छापे, गाँव वालों के साथ मार पीट, गिरफ्तारियाँ और गाँव वालों को आतंकित किया जाना बंद किया जाए।

2) 2006 के वन अधिकार अधिनियम को पूरी गंभीरता के साथ लागू किया जाना चाहिए। वन अधिकार समितियों को अधिनियम के प्रावधानों और इन्हें क्रियान्वित करने के लिए ज़रूरी प्रक्रिया से अवगत करवाया जाना चाहिए। समितियों को सर्वे करने, ज़मीनों के रिकॉर्ड बनाने और उन्हें सत्यापित करने के लिए उचित प्रशिक्षण और कुशल पेशेवर उपलब्ध करवाए जाने चाहिए।

3) वन विभाग को 2006 के अधिनियम के लागू किए जाने की प्रक्रिया में दखल देना बंद करना चाहिए और खासतौर पर बीज बोए जाने में बाधा उत्पन्न करना, फसल बर्बाद करना और कूंए और खेतों की जोतों को बर्बाद करना बंद करना चाहिए।

4) वन विभाग द्वारा जॉएंट फॉरेस्ट मैनेजमेंट के फंड का दुपर्योग बंद होना चाहिए। इस फंड के इस्तेमाल के सभी निर्णय गाँव वालों के हाथ में होने चाहिए और इसके खाते सार्वजनिक छानबीन के लिए उपलब्ध होने चाहिए।

5) हरदा के जिला प्रशासन को उनके न्यायक्षेत्र में हो रहे श्रम कानूनों के सभी उल्लंघनों पर ध्यान देना चाहिए।

6) हरदा के हालात को देखते हुए शमीम मोदी पर हुए कातिलाना हमले की जाँच किसी केन्द्रिय ऐजेंसी द्वारा होनी चाहिए।

Inside back cover

प्रकाशक : सचिव, पीपल्स यूनियन फॉर डैमोक्रैटिक राइट्स, दिल्ली (पी.यू.डी. आर.)
मुद्रक : हिन्दुस्तान प्रिंटर्स, नवीन शहदरा, दिल्ली 110032
प्रतियों के लिए : डॉ मौशुमी बासु, ए – 6/1 अदिति अपार्टमेंट्स, पॉकेट डी, जनकपुरी, नई दिल्ली 110058
सहयोग राशि : 5 रु.
ई मेल : pudrdelhi@yahoo.com
वेबसाइट : www.pudr.org